# 20

# भारतीय आस्था और भगवती गंगा

**युगल किशोर मिश्र**

भारतीय आर्ष चिन्तन एवं मान्यता में भगवती गंगा का अत्यन्त श्रद्धास्पद स्थान है। वेद से लेकर समस्त संस्कृत वाङ्मय में ऋषियों, आचार्यों, सन्तों एवं कवियों ने सर्वोच्च आदरभाव से न केवल भगवती गंगा की स्तुति की है अपितु उनके अलौकिक महत्त्व एवं दिव्य सामर्थ्य को रेखांकित किया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के मंत्र (इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति ---) में सर्वप्रथम गंगा का नाम प्रस्तुत होना इस बात का संकेत है कि गंगा के आधिदैविक स्वरूप के साथ-साथ उनका आधिभौतिक स्वरूप जो नदी के रूप में है, वह नितान्त श्रद्धेय एवं अनितरसाधारण है।

संस्कृत वाङ्मय के आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने 'गंगाष्टकम्' में अपने अन्तस्तल के भावों को मार्मिक ढंग से प्रकट करते हुये भगवती गंगा के प्रति कहा है -

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृंगारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः।।

अर्थात् ''हे गिरिनन्दिनि की भगिनि माँ गंगे! आप भूदेवी पृथ्वी के वक्षस्थल पर शोभायमान मौक्तिहार हैं तथा प्राणियों के स्वर्गारोहण की अद्वितीय विजयपताका हैं। अतः मैं (वाल्मीकि) आपसे यह याचना करता हूँ कि आपके तट पर वास करते हुए, आपके अमृतसम जल को पीते हुए, आपके धवल लहरों की गोद में स्नान के व्याज से क्रीडा करते हुए, आपके भवतारण नाम को जपते हुए तथा आपके मनोरम जलमय विग्रह को निहारते हुए मेरा यह पांचभौतिक शरीर छूटे।''

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रचना में गंगाजल की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा कि -

1. गंगाजल सामान्य जल न होकर अमृतोपम दैवी जल है।

2. गंगाजल में प्राणियों के बाह्य एवं आभ्यन्तर कल्मषों (पापों) को धो देने की अपूर्व शक्ति है।

3. गंगाजल समस्त ऐश्वर्यों के साथ-साथ मोक्ष प्रदान करने की दिव्य शक्ति से समन्वित है। अतएव वे कहते हैं -

अभिनवविसवल्ली पादपद्मस्य विष्णोर्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु।।

गंगाजल की उपर्युक्त अनितरसाधारण विशेषताओं का रहस्य बतलाते हुए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि गंगा का जल व्यापनशील विष्णु अर्थात् द्युलोक से च्युत होकर आता है अतः यह 'मुरारिचरणच्युतम्' है। उसके बाद वह व्योमकेश (शिव) के विशाल जटाजूट (अन्तरिक्ष) में ठहरता है अतः ''त्रिपुरारिशिरश्चारि'' है। इसके अनन्तर भगवती गंगा का जल पृथ्वी के

सर्वोच्च एवं श्रेष्ठभाग हिमालय पर अवतरित होता है और वहाँ के दिव्य औषधीय गुणों को समेट कर धराधाम पर बहते हुये सागर की गुहा में प्रविष्ट होता है। अतः यह जल आध्यात्मिक, आधिदैविक, एवं आधिभौतिक सन्तापों एवं कल्मषों (पापों) को नष्ट करने में समर्थ है तथा अलौकिक शुचिता को प्रदान करता है।

भगवती गंगा के लिए ''त्रिपथगा'' विशेषण विशेषतया प्रयुक्त होता है। महर्षि व्यास मत्स्य पुराण में गंगा के 'त्रिपथगा' नाम का मर्म समझाते हुये कहते हैं कि -

क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागाँस्तारयतेऽप्यधः।
दिवि तारयते देवांस्तस्मात्त्रिपथगा स्मृता।।

अर्थात् पृथ्वीलोक में मनुष्यों को, पाताललोक में पातालचारी नागों एवं अन्य जीवों को तथा देवलोक में देवताओं को भगवती गंगा तारती हैं इसलिए यह ''त्रिपथगा'' कही जाती हैं।

महर्षि व्यास ने गंगा के वैशिष्ट्य-प्रसंग में यह भी कहा कि पृथ्वी के जिस भाग पर गंगा बहती है वह भाग ''सिद्धक्षेत्र'' बन जाता है।

यत्र गंगा महाभागा बहुतीर्थास्तपोधनाः।
सिद्ध-क्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।।

महान् दार्शनिक आचार्य श्री शंकरभगवत्पाद ने स्वविरचित ''गंगाष्टकम्'' में महर्षि वाल्मीकि एवं महर्षि व्यास के उपयुक्त कथन को स्वीकार करते हुए अपने शब्दों में कहा कि -

भगवति! तव तीरे नीर-मात्राशनोऽहम्
विगत-विषय-तृष्णः कृष्णमाराधयामि।।
सकल-कलुष भङ्गे! स्वर्ग-सोपान-सङ्गे!
तरल-तर-तरङ्गे! देवि गंगे! प्रसीद।।

हे भगवति गंगे! मैं आपके तट पर (सिद्धक्षेत्र होने के कारण) केवल गंगाजल पीता हुआ विषय तृष्णाओं को त्याग कर भगवदाराधन में लीन हूँ। आप समस्त पापों को नाश करने वाली, परमपद स्वर्ग को पहुँचाने वाली सीढ़ी हो अतः अत्यन्त पावन चंचल लहरों वाली हे गंगे! आप मुझ पर प्रसन्न हों (मुझे मोक्ष प्रदान करें)।

आचार्य शंकर, गंगा-स्तवन में यह भी कहते हैं कि - सृष्टि के पूर्व यह गंगा ईश्वर में लीन निराकारस्वरूपा थीं। सृष्टि के पश्चात् इस जगत के देव, असुर तथा मानवों को अपने भ्रान्तिजन्य पापों से निर्मित दुखसागर में डूबते हुए देखकर माता गंगा को दया आयी और वे जगत् का उद्धार करने के लिए जलस्वरूप (नदी) होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित हो गयीं-

निराकारासृष्टेरभवदियमीशात्मनि पुरा जगद्दृष्टवादेवासुरनरमुखभ्रान्तिनिविडम्।
निमग्नं दुःखाब्धौ दुरितरचिते वीक्ष्य कृपया समुद्धर्तुंनीराकृतिमिहविधायाविरभवत्।।

रामभक्त मारुति श्री हनुमान जी ने भी भक्ति-भाव से ओत-प्रोत होकर भगवती गंगा की दिव्यता का वर्णन एवं स्तवन स्वविरचित श्लोकों में किया है। एक श्लोक में वे कहते हैं कि -

वरं त्वदीये पुलिने पुलिन्दा मन्दाकिनिक्षालितपापकन्दाः।
मन्दारमालामलमौलिमाला न लोकपालानच भूमिपालाः।।

हे मन्दाकिनि! आपके तट पर रहने के कारण जिनके पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे किरात भी अच्छे हैं, किन्तु तट पर न रहने वाले मन्दारमाला से युक्त रत्नमाला गले में पहनने वाले इन्द्रादिलोकपाल तथा राजा भी श्रेष्ठ भाग्यशाली नहीं हैं।

संस्कृत के महनीय कवि पंडितराज जगन्नाथ की ''गंगालहरी'' एक अनुपम रचना है जिसमें भगवती गंगा के दिव्य सौन्दर्य एवं अद्वितीय वैभव का वर्णन है। पंडितराज जगन्नाथ का मानना है कि - सृष्टि के समस्त कार्यों से विरत होकर भगवान् ब्रह्मा, विष्णु शेषशैय्या पर अनन्तकाल तक सुखपूर्वक सोते रहे, प्राणियों को अभयदान एवं मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान शंकर भी अपने कार्य से विरत होकर सदैव नृत्य में ही संलग्न रहे एवं मनुष्यजन भी अपने पूर्व जन्म एवं इस जन्म के पापों को नष्ट करने एवं पुण्यलाभ प्राप्त करने के लिए तप, दान, यज्ञ, प्रायश्चित्तादि कर्म छोड़ दें तो भी कोई हानि नहीं होने वाली है यदि सर्वमनोरथदायिका भगवती गंगा इस धराधाम पर बहती रहें। अर्थात् एकमात्र भगवती गंगा ही प्राणियों के दुरितों को नष्ट कर भोग एवं मोक्ष प्रदान करने के लिए पर्याप्त है -

विधत्तां निःशङ्कं निरवधिसमाधिर्विधिरहो सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः।
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती।।

मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि रसखान ने पंडितराज जगन्नाथ के उपर्युक्त भावों से दो कदम आगे बढ़कर दृढ़ विश्वासपूर्वक यह घोषणा कर दी कि माँ गंगा के पृथ्वी पर रहते हुए प्राणियों को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है केवल गंगा के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, सदाचारपूर्वक गंगा स्नान करते हुए अपना जीवन-निर्वाह करते रहने पर ही भोग एवं मोक्ष मानव को अनायास प्राप्त हो जाएंगे। वे कहते हैं -

वैद की औषधि खाउ कछू न करौं व्रत-संजम री ! सुनु मौसे।
तेरो इ पानी पियौं 'रसखानि' संजीवनी-लाभ लहौं सुख तौसे।।
एरी सुधामयी भागीरथी! कोउ पथ्य-कुपथ्य करै तऊ पोसे।
आक धतूरे चबात फिरैं विष खात फिरैं शिव तेरे भरोसे।।

किसी कालखण्ड में पंडितराज जगन्नाथ ने वाराणसी में बहती हुई गंगा के सौन्दर्य को एवं निर्मल अविरल जलप्रवाह को निहारते हुए प्रसन्नता के उद्वेग से यह कहा था कि-

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयोर्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः।।

अर्थात् हे माता, इस संसार में हम प्राणियों की इन बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों की क्या सार्थकता है यदि इन्होंने परमरमणीय तेरे जलप्रवाहरूप मनोरम शरीर का दर्शन न किया हो। हे जननी गंगे, हम प्राणियों के उन कानों को भी धिक्कार है जिनके भीतर परम पुनीत तेरी निर्मल-शीतल-चंचल वेगशील लहरों की कल-कल ध्वनि न गयी हो।

जिस पतितपावनी गंगा ने वैदिक काल से लेकर आजतक मानव के अति मलिन पापों को धोकर उसे पुण्यात्मा बनाया हो, उसे अनन्त सुख-समृद्धि प्रदान कर ऐश्वर्यशाली बनाया हो तथा परमपद प्राप्त कराया हो उसी गंगा माता को स्वार्थ एवं लोभ से वशीभूत होकर मानव ने बड़े-बड़े बाँधों की जंजीरों से बाँध कर कैद कर दिया है तथा अपने विवेकशून्य कार्यों एवं कुकृत्यों से भगवती गंगा को मृतप्राय कर दिया है। आज ''निर्मलगंगा-अविरल गंगा'' के उद्घोष को पुनः संतो, महात्माओं एवं विवेकशील जनता ने उठाया है। मैं समसामयिक सन्दर्भ में पंडितराज जगन्नाथ के उपरिवर्णित कथ्य को इस रूप में कहना चाहूँगा कि -

''हम मानवों की इन बड़ी-बड़ी विशाल सुन्दर आँखों का क्या प्रयोजन है यदि पुराने कालवाली निर्मल एवं अविरल गंगा जलप्रवाह का काशी में दर्शन न कर सकें तथा हम काशीवासी मनुष्यों के इन कानों को भी धिक्कार है जिनके भीतर निर्मल जलवाली अविरल गंगा की चंचल जल लहरियों की कल-कल ध्वनि न सुनाई पड़े।''